JAYJINENDRA

CHHADHALA PRESENTATION

BY

SAURABH & GAURAV JAIN INDORE (INDIA)

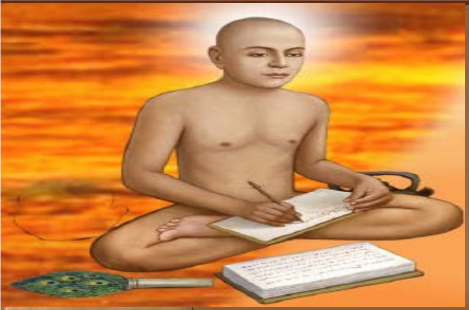

छहढाला

अध्यात्मप्रेमी कविवर पण्डित दौलतरामजी कृत

तीसरी ढाल

तीसरी ढाल में आत्महित को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि आत्मा का हित सुख है और सुख का अर्थ है आकुलतारहित दशा; आकुलता मुक्तदशा में नहीं है, अतः हमें मुक्तिमार्ग में लगना चाहिए। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता ही मुक्तिमार्ग है।

मुक्तिमार्ग का पहला चरण : सम्यग्दर्शन - स्वरूप एवं महिमा

आत्महितरूप मोक्षमार्ग का निरूपण

निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र का स्वरूप

व्यवहार सम्यग्दर्शन का वर्णन

जीव तत्त्व और उसके भेद–प्रभेद

अजीव तत्त्व का वर्णन

आस्रव और बन्ध तत्त्व का वर्णन

संवर–निर्जरा तत्त्व का वर्णन

मोक्ष तत्त्व और देव–गुरु–धर्म का वर्णन

सम्यक्त्व के गुण–दोष और उनके ग्रहण–त्याग का उपदेश

सम्यक्दृष्टि जीव की दशा और महिमा

सम्यग्दर्शन का महात्म्य / दुर्गति गमन का अभाव

मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी सम्यग्दर्शन

तीसरी ढाल का सारांश

छन्द - १

तीसरी ढाल

मुक्तिमार्ग का पहला चरण

सम्यग्दर्शन : स्वरूप एवं महिमा

निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग का वर्णन

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिनु कहिये।
आकुलता शिवमाहि न तातें, शिवमग लागौ चहिये॥
सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चरण, शिवमग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ रूप सुनिश्चय, कारन सो व्यवहारो॥

- आत्मा का हित सुख है और सुख का लक्षण निराकुलता है।
- आकुलता का सम्पूर्ण अभाव मोक्षदशा में है; इसलिए मोक्ष की उपलब्धि हेतु मोक्षमार्ग में लगना ही जीव का कर्तव्य है।
- सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र की एकता ही मोक्षमार्ग है।
- मोक्षमार्ग दो नहीं हैं, तथापि मोक्षमार्ग का कथन दो प्रकार का है।

छन्द - २

निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरुप

परद्रव्यन तें भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त भला है।
आपरूप को जानपणों सो, सम्यक्ज्ञान कला है॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोखमग सुनियै, हेतु नियत कौ होई॥

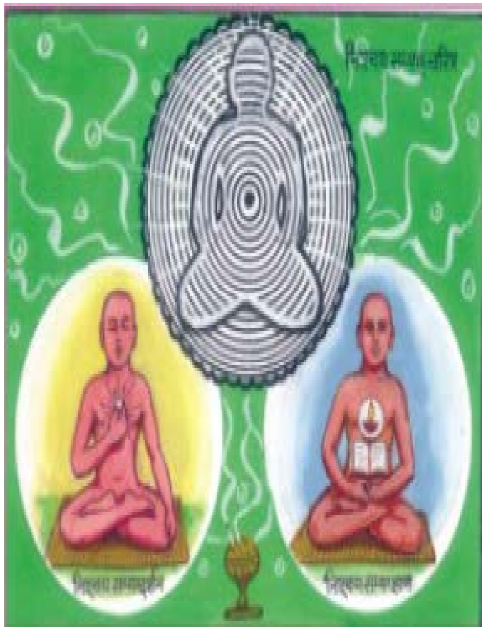

- परपदार्थों से त्रिकाल भिन्न निज-आत्मा का अटल विश्वास करना, निश्चयसम्यग्दर्शन हैं।
- आत्मा को परवस्तुओं से भिन्न जानना, निश्चयसम्यग्ज्ञान है।
- परद्रव्यों का आलम्बन छोड़कर, आत्मस्वरूप में एकाग्रता से मग्न होना, निश्चयसम्यक्चारित्र है।

छन्द - ३

व्यवहारसम्यग्दर्शन का निरुपण

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानों।
निर्जर मोख कहै जिन तिनकों, जों कौ सौं सरधानों॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानों।
तिनकूं सुनि सामान्य विशेषै, दिढ़ प्रतीति उर आनौ॥

- जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष सात तत्त्व कहे हैं।
- जिसे निश्चयसम्यग्दर्शन न हो, उसे व्यवहारसम्यग्दर्शन भी नहीं हो सकता।
- निश्चयश्रद्धापूर्वक सात तत्त्वों की विकल्प-रागसहित श्रद्धा को व्यवहारसम्यग्दर्शन कहा जाता है।
- सात तत्त्वों की श्रद्धा भेदरूप है, रागसहित है; इसलिए वह व्यवहारसम्यग्दर्शन है।

छन्द – ४ अवस्थादृष्टि की अपेक्षा जीवतत्त्व के भेद-प्रभेद एवं प्रत्येक का स्वरूप

बहिरातम, अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव कूं एक गिनें बहिरातम तत्त्व मुधा है॥
उत्तम मध्य जघन्य त्रविधि के, अन्तर-आतम ज्ञानी,
दुविध संग बिनु सुध उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी॥

अवस्थादृष्टि की अपेक्षा से जीव / आत्मा तीन प्रकार के हैं –

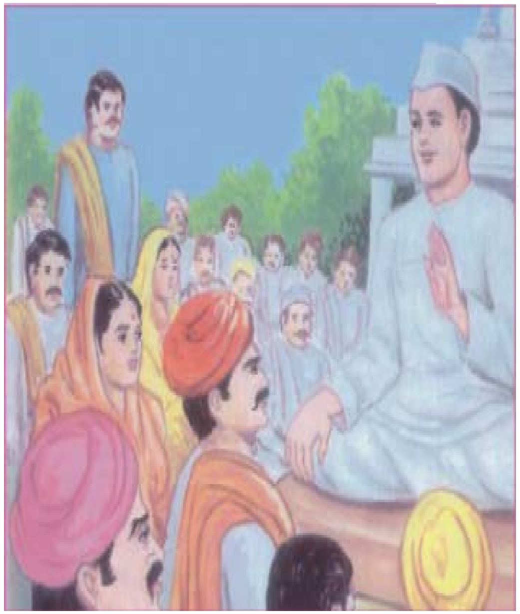

१. बहिरात्मा

२. अन्तरात्मा

३. परमात्मा

छन्द - ४

१. बहिरात्मा

उनमें जो शरीर और आत्मा को एक मानता है, उसे बहिरात्मा कहते हैं; वह तत्त्वमूढ़ मिथ्यादृष्टि है। वस्तुत: सम्यग्दर्शन के बिना कभी धर्म का प्रारम्भ नहीं होता; इसलिए जिसे निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं है, वह जीव बहिरात्मा है।

२. अन्तरात्मा

जो भेदविज्ञान से शरीर और आत्मा को भिन्न-भिन्न जानते-मानते हैं, वे अन्तरात्मा अर्थात् सम्यग्दृष्टि हैं।

अन्तरात्मा के तीन भेद हैं — उत्तम, मध्यम, और जघन्य।

अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग, दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित सातवें से बारहवें गुणस्थान में वर्तते हुए शुद्ध-उपयोगी आत्मध्यानी दिगम्बर मुनि उत्तम अन्तरात्मा हैं।

छन्द – ५

मध्यम व जघन्य अन्तरात्मा के स्वरूप तथा परमात्मा के भेदों का वर्णन

मध्यम अन्तर-आतम हैं जे, देशव्रती आगारी।
जघन्य कहै अविरत-समदिष्टी, तीनौ शिवमगचारी॥
सकल निकल परमातम द्वै विधि, तिनमें घाति निवारी।
सो अर्हन्त सकल परमातम, लोकालोक निहारी॥

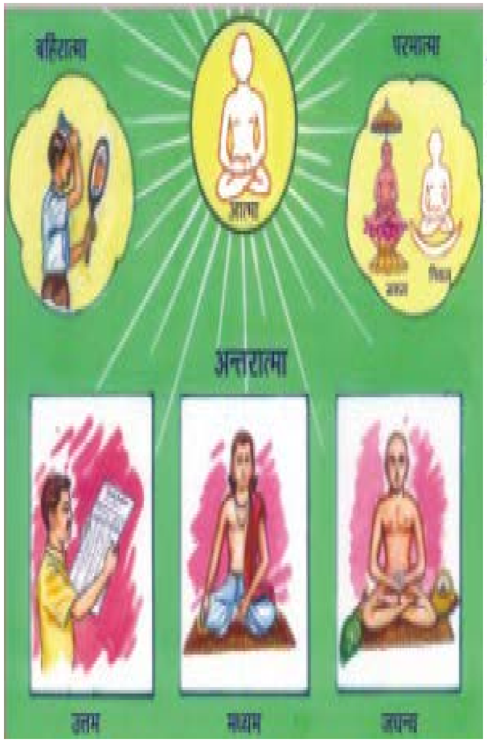

जो गृहरहित छठवें गुणस्थान के समय अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग परिग्रहरहित यथाजातरूपधर-भावलिङ्गी मुनि, तथा दो कषाय के अभावसहित पञ्चम गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि श्रावक हैं, वे मध्यम अन्तरात्मा हैं।

↓

व्रतरहित सम्यग्दृष्टि जीव जघन्य अन्तरात्मा कहे हैं। ये तीनों ही मोक्षमार्ग पर चलनेवाले हैं।

↓

छन्द – ५

परमात्मा के दो प्रकार हैं – सकल और निकल।

श्री अरहन्त-परमात्मा सकल अर्थात् शरीरसहित परमात्मा हैं।

औदारिक आदि शरीररहित, द्रव्य-भाव -नोकर्मरहित, निर्दोष और पूज्य, शुद्ध ज्ञानमय सिद्ध परमेष्ठी निकल अर्थात् शरीररहित परमात्मा हैं; वे अक्षय अनन्त काल तक अनन्त सुख का अनुभव करते हैं।

अवस्थादृष्टि की अपेक्षा से जीव / आत्मा तीन प्रकार के हैं —

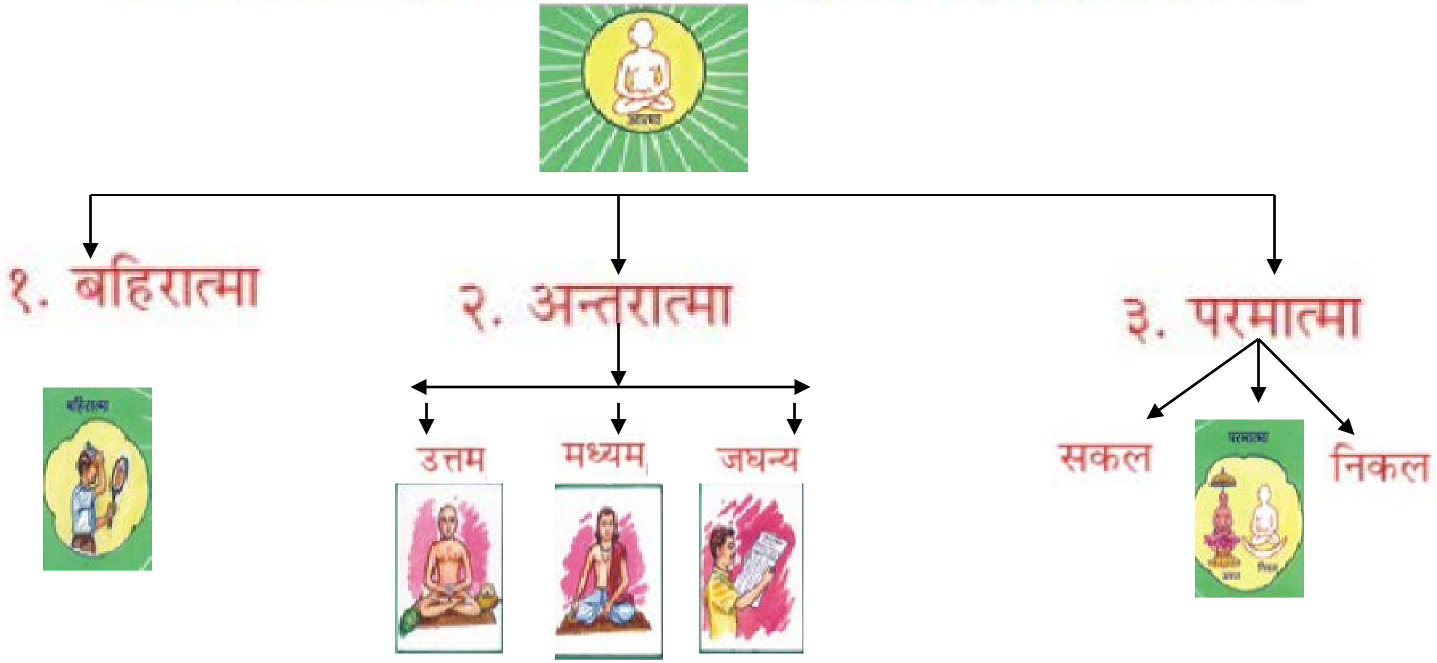

छन्द - ६

हमारा कर्तव्य क्या है?

ज्ञानशरीरी त्रिविधि कर्ममल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै।
परमातम कूं ध्याय निरन्तर, जौ निज आनन्द पूजै॥

- ज्ञान ही जिनका शरीर है और जो समस्त राग-द्वेष-मोहादि भावकर्म, ज्ञानावरणादि आठ द्रव्यकर्म और शरीरादि नोकर्मरूप तीनों कर्ममल से रहित हैं, वे सिद्ध परमेष्ठी, 'निकल परमात्मा' कहलाते हैं। वे सादि-अनन्त काल तक अनन्त सुख का भोग करते हैं।

- अवस्थादृष्टि से जीव के इन तीन बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मारूप भेदों में से बहिरात्मपना तो मिथ्यात्वसहित होने के कारण हेय अर्थात् छोड़ने योग्य है।

छन्द – ७ अजीवतत्त्व का वर्णन और उसके भेदों का परिज्ञान

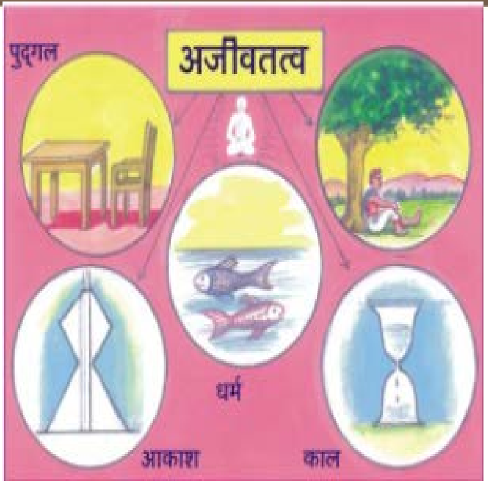

चेतनिता बिनु सो अजीव है, पंच भेद जाके हैं।
पुद्गल पंच वरण, रस, गंध–दु, फरस वसु ताके हैं॥
जिय पुद्गल कूं चलत सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी।
तिष्ठत होत सहाई अधरम, जिन बिन–मूर्ति निरूपी॥

भावार्थ – जिसमें चेतना अर्थात् ज्ञान–दर्शन अथवा जानने–देखने की शक्ति नहीं होती, उसे अजीव कहते हैं। उस अजीव के पाँच भेद हैं — पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, और काल।

जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण होते हैं, उसे पुद्गलद्रव्य कहते हैं।

जो, स्वयं गति करते हुए जीव और पुद्गल को गमन में निमित्तकारण होता है, वह धर्मद्रव्य है।

जो, स्वयं गतिपूर्वक स्थिर होते हुए जीव और पुद्गल को स्थिर रहने में निमित्तकारण होता है, वह अधर्मद्रव्य है।

छन्द - ८ अजीवतत्त्व के वर्णन का समापन एवं आस्रवतत्त्व के स्वरूप का प्रतिपादन

सकल द्रव्य कौ वास जास में, सो आकास पिछानौं।
निअत वर्तना निसदिन सो, व्यवहारकाल परिवानौ॥
यों अजीव, अब आस्रव सुनियें, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा॥

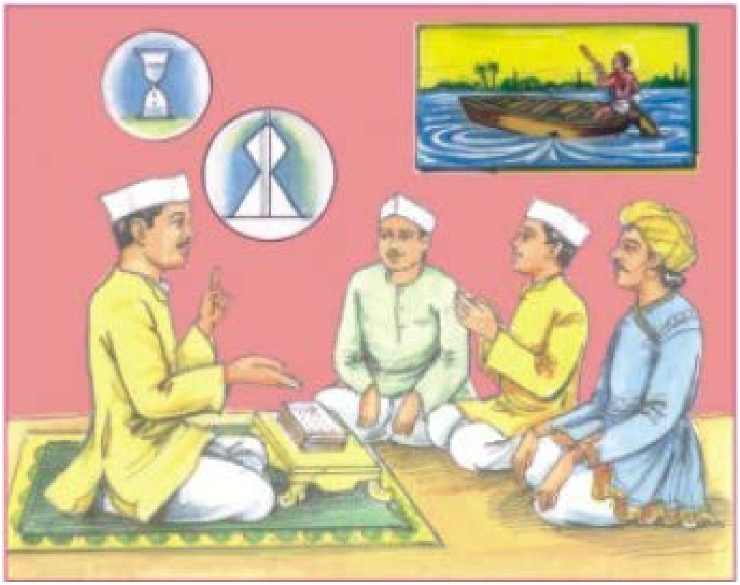

जिसमें छह द्रव्यों का निवास है, उस स्थान को आकाश कहते हैं।

छन्द – ८

अपनी–अपनी पर्यायरूप से स्वयं परिणमित होते हुए जीवादिक द्रव्यों के परिणमन में जो निमित्त हो, उसे कालद्रव्य कहते हैं, जिस प्रकार कुम्हार के चाक को घूमने में धुरी अर्थात् कीली।

कालद्रव्य को निश्चयकाल कहते हैं। लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही कालद्रव्य (कालाणु) हैं। दिन, घड़ी, घण्टा, मास इत्यादि को व्यवहारकाल कहते हैं।

मन–वचन–काय के निमित्त से आत्मप्रदेशों का परिस्पंदनरूप तीन प्रकार का योग तथा मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषायसहित जीव का उपयोग, आस्रव कहलाता है।

छन्द - ९

आस्रव को ही दुःखरूप बताकर; बन्ध, संवर, और निर्जरा तत्त्व का प्रयोजन सहित भाववाही वर्णन

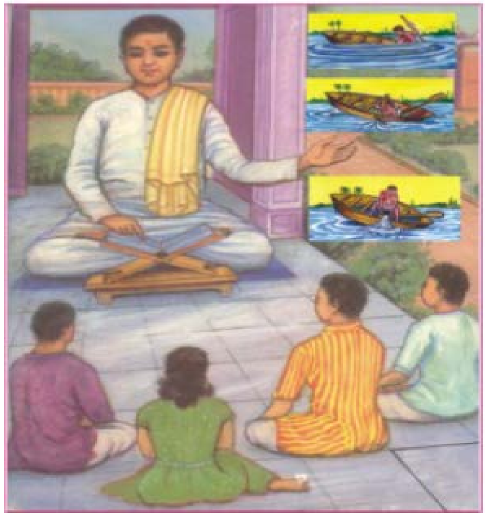

ये ही आतम कौ दुःख-कारण, तातें इनकूं तजिये।
जीव प्रदेश बँधै विधि सौं सो, बंधन कबहूँ न सजिये॥
सम-दम तें जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तपबल तें विधि-झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥

- बन्ध-जीव के मिथ्यात्व-मोह-राग-द्वेषरूप परिणाम, वह भावआस्रव है और उन मलिन भावों में स्निग्धता, वह भावबन्ध है।

- बन्ध तत्त्व का दृष्टान्त यह है कि जिस प्रकार छिद्र द्वारा पानी नौका में भर जाता है; उसी प्रकार कर्मपरमाणु, आत्मा के प्रदेशों में पहुँचते हैं अर्थात् एक क्षेत्र में रहते हैं।

छन्द – ९

संवर– पुण्य–पापरूप अशुद्धभाव (आस्रव) को आत्मा के शुद्धभाव द्वारा रोकना, भावसंवर है और तद्नुसार नवीन कर्मों का आना स्वयं–स्वत: रुक जाना, द्रव्यसंवर है।

जिस प्रकार छिद्र बन्द करने से नौका में पानी का आना रुक जाता है; उसी प्रकार शुद्धभावरूप गुप्ति आदि के द्वारा आत्मा में कर्मों का आना रुक जाता है।

निर्जरा — अखण्डानन्द निज शुद्धात्मा के लक्ष्य से अंशत: शुद्धि की वृद्धि और अशुद्धि की अंशत: हानि करना, भावनिर्जरा है और उस समय खिरनेयोग्य कर्मों का अंशत: छूट जाना, द्रव्यनिर्जरा है।

जिस प्रकार नौका में आये हुए पानी में से थोड़ा पानी किसी बरतन में भरकर बाहर फेंक दिया जाता है; उसी प्रकार निर्जरा द्वारा थोड़े कर्म आत्मा से अलग हो जाते हैं।

छन्द - १० मोक्षतत्त्व का वर्णन करके, व्यवहारसम्यग्दर्शन के कारण का निरुपण

सकल कर्म तें रहित अवस्था, सो सिव थिर सुखकारी।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वनि की, सो समकित व्यवहारी॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रहबिन, धर्म दयाजुत सारौ।
यहू जानि समकित कौ कारण, अष्ट अंगजुत धारौ॥

भावार्थ - आठ कर्मों के सर्वथा नाशपूर्वक आत्मा की सम्पूर्ण शुद्धदशा (पर्याय) प्रगट होती है, उसे मोक्ष कहते हैं। वह दशा अविनाशी तथा अनन्त सुखमय है।

छन्द - १० जिस प्रकार नौका में आया हुआ सारा पानी निकाल देने से नौका एकदम पानी रहित हो जाती है; उसी प्रकार आत्मा में से समस्त कर्म पृथक् हो जाने से आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा (मोक्षदशा) प्रगट हो जाती है अर्थात् आत्मा मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार सामान्य और विशेषरूप से सात तत्त्वों की अचल श्रद्धा करना, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहते हैं।

जिनेन्द्रदेव, वीतरागी दिगम्बर जैन निर्ग्रन्थ गुरु, तथा जिनेन्द्रप्रणीत अहिंसामय धर्म भी, उस व्यवहारसम्यग्दर्शन के कारण हैं अर्थात् इन तीनों का यथार्थ श्रद्धान भी व्यवहारसम्यग्दर्शन कहलाता है।

छन्द – ११

सम्यग्दर्शन में त्यागने योग्य पच्चीस दोष :

वसु मद टारि, निवारि त्रिसठता, षट् अनायतन त्यागौ।
संकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित्त पागौ॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसौं, तिन संक्षेप कहियै।
बिन जाने ते दोष गुनन कौं, कैसे तजियै गहियै॥

भावार्थ – आठ मद, तीन मूढ़ता, छह अनायतन अर्थात् अधर्म–स्थान, और शङ्कादि आठ दोष — इस प्रकार सम्यक्त्व के पच्चीस दोष हैं। सम्यग्दृष्टि को संवेग, अनुकम्पा, आस्तिक्य और प्रशम होते हैं। सम्यक्त्व के अभिलाषी जीव को सम्यक्त्व के इन पच्चीस दोषों का त्याग करके, संवेगादि भावनाओं में मन लगाना चाहिए।

सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष

आठ दोष

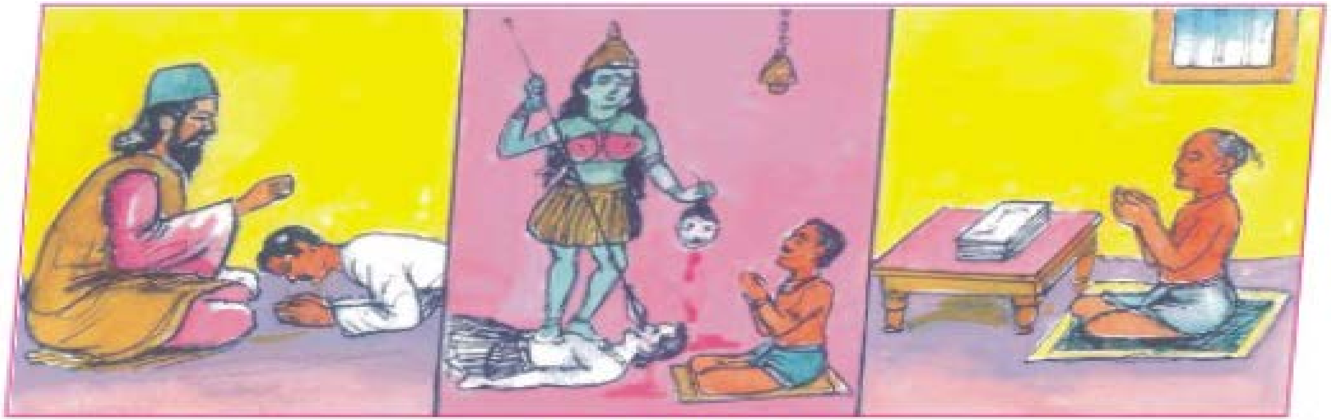

षट् अनायतन

छन्द - १२

सम्यग्दर्शन के नि:शङ्कित आदि गुणों का वर्णन

जिन वच में संका न धार, वृष भव-सुख-वाँछा भानौ।
मुनि-तन मलिन देख न घिनावै, तत्त्व-कुतत्त्व पिछानौ॥
निज गुण अरु पर औगुण ढाकै, वा निजधर्म बढ़ावै।
कामादिक करि वृष तें चिगते, निज-पर कौं सु दिढ़ावै॥

व्यवहारसम्यग्दर्शन के अष्ट अङ्गों का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है –

१. तत्त्व यही है, ऐसा ही है; अन्य नहीं है तथा अन्य प्रकार से नहीं है – प्रकार यथार्थ तत्त्वों में अचल श्रद्धा होना, निशङ्कित अङ्ग है।

नि:कांक्षित अङ्ग

२. धर्म सेवन करके, उसके फल में सांसारिक सुखों की इच्छा नहीं करना, नि:कांक्षित अङ्ग है।

छन्द - १२

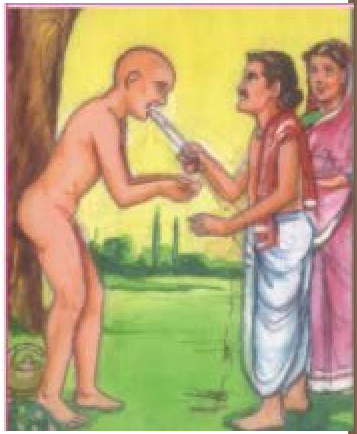

३. मुनिराज अथवा अन्य किसी धर्मात्मा के शरीर को मैला देखकर घृणा नहीं करना, निर्विचिकित्सा अङ्ग है।

४. सच्चे और झूठे तत्त्वों की परीक्षा करके, मूढ़ताओं तथा अनायतनों में नहीं फँसना, अमूढ़दृष्टि अङ्ग है।

छन्द - १२

५. अपनी प्रशंसा करानेवाले गुणों को तथा दूसरे की निन्दा करानेवाले दोषों को ढँकना और आत्मधर्म को बढ़ाना / निर्मल रखना, उपगूहन अङ्ग है।

६. काम, क्रोध, लोभ आदि किसी भी कारण से, सम्यक्त्व और चारित्र से भ्रष्ट होते हुए अपने को तथा पर को पुनः उसमें स्थित करना, स्थितिकरण अङ्ग है।

छन्द - १३

पूर्व छन्द में शेष रहे गुण और आठ मदों का वर्णन

धर्मी सौ गौ-वच्छ-प्रीति सम, करि जिनधर्म दिपावै।
इन गुण तें विपरीत दोष वसु, तिनकौं संत खिपावै॥
पिता भूप वा मातुल नृप जौ, होइ न तौ मद ठानें।
मद न रूप कौ मद न ज्ञान कौ, धन बल कौ मद भानें॥

७. अपने साधर्मीजन पर बछड़े से प्यार रखनेवाली गाय की भाँति निरपेक्ष प्रेम रखना, वात्सल्य अङ्ग है।

छन्द - १३

८. अज्ञान-अन्धकार को दूर करके विद्या-बल-बुद्धि आदि के द्वारा शास्त्र में कही हुई योग्य रीति से अपने सामर्थ्यानुसार जैनधर्म का प्रभाव प्रगट करना, प्रभावना अङ्ग है।

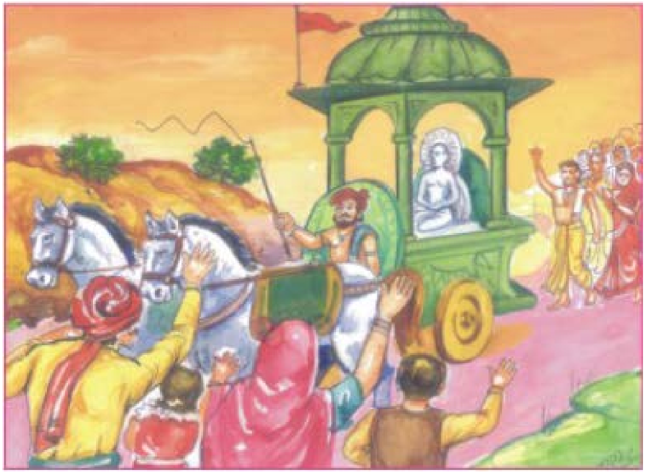

☆ इस प्रकार सम्यग्दर्शन के आठ अङ्ग जानना चाहिए।

— इन अङ्गों / गुणों से विपरीत १. शङ्का, २. काँक्षा, ३. विचिकित्सा, ४. मूढ़दृष्टि, ५. अनुपगूहन, ६. अस्थितिकरण, ७. अवात्सल्य, और ८. अप्रभावना — ये सम्यक्त्व के आठ दोष हैं, इन्हें सदा दूर करना चाहिए।

छन्द - १३

आठ मदों का वर्णन

१. पिता आदि पितृपक्ष में राजादि प्रतापी पुरुष होने से 'मैं राजकुमार हूँ आदि' अभिमान करना, कुल-मद है।

२. मामा आदि मातृपक्ष में राजादि प्रताप पुरुष होने का अभिमान करना, जाति-मद है।

३. शारीरिक सौन्दर्य का मद करना, रूप-मद है।

४. अपनी विद्या का अभिमान करना, ज्ञान-मद है।

५. अपनी धन-सम्पत्ति का अभिमान करना, धन-मद है।

६. अपनी शारीरिक शक्ति का गर्व करना, बल-मद है।

छन्द - १४

पूर्व छन्द में शेष रहे मद दोष एवं सम्यग्दर्शन में त्याज्य षट अनायतनों के स्वरूप का वर्णन

तप कौ मद न, मद न प्रभुता कौ, करै न सो निज जानें।
मद धारै तौ यही दोष वसु, सम्यक कूं मल ठानें॥
कुगुरु-कुदेव-कुवृष सेवक की नहीं प्रसंस उचरै है।
जिन मुनि जिनश्रुत बिनु कुगुरादिक, तिनहि न नमन करै है॥

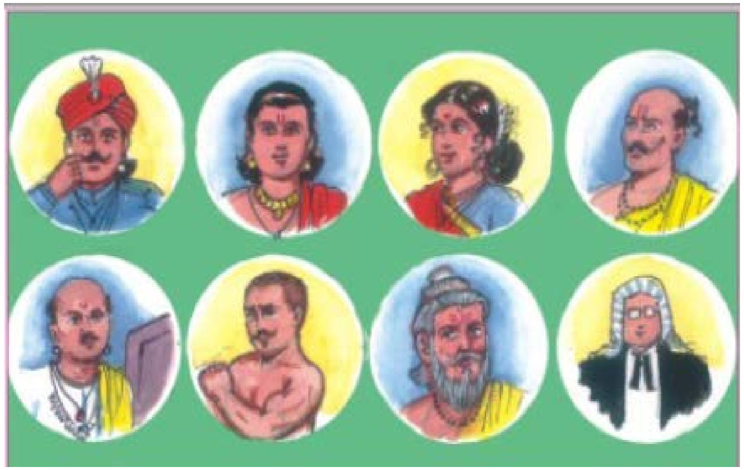

७. अपने व्रत-उपवासादि तप का गर्व करना, तप-मद है।

८. अपने बड़प्पन और आज्ञा का गर्व करना, प्रभुता-मद है।

छन्द - १४ छह अनायतन दोषों का निरुपण करते हैं —

कुगुरु, कुदेव, कुधर्म और कुगुरु-सेवक, कुदेव-सेवक तथा कुधर्म-सेवक — ये छह अनायतन अर्थात् धर्म के अस्थान कहलाते हैं। उनकी भक्ति, विनय और पूजनादि तो दूर रही, सम्यग्दृष्टि जीव उनकी प्रशंसा भी नहीं करता; क्योंकि उनकी प्रशंसा करने से भी सम्यक्त्व में दोष लगता है।

सम्यग्दृष्टि जीव, जिनेन्द्र देव, वीतरागी मुनि और जिनवाणी के अतिरिक्त, कुदेव-कुगुरु और कुशास्त्रादि को भय, आशा, लोभ और स्नेह आदि के कारण भी नमस्कार नहीं करता; क्योंकि उन्हें नमस्कार करनेमात्र से भी सम्यक्त्व दूषित हो जाता है। कुगुरु-सेवा, कुदेव-सेवा तथा कुधर्म-सेवा — ये तीन भी सम्यक्त्व के मूढ़ता नामक दोष हैं।

छन्द - १५

अनेक दृष्टान्तों के द्वारा अविरत सम्यग्दृष्टि जीव की महिमा

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यकदर्श सजै हैं।
चारित मोहवस लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं॥
गेही, पै गृह में न रचै जौं, जल तें भिन्न कमल है।
नगरनारि कौ प्यार जथा, कादा में हेम अमल है॥

भावार्थ - जो विवेकी पच्चीस दोषरहित तथा आठ अङ्ग अर्थात् आठ गुणसहित सम्यग्दर्शन धारण करते हैं, उन्हें अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय के तीव्र उदय में युक्त होने के कारण, यद्यपि लेशमात्र संयमभाव नहीं होता, तथापि इन्द्रादि उनकी पूजा अर्थात् आदर करते हैं।

छन्द - १५

- जिस प्रकार पानी में रहने पर भी कमल पानी से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि घर में रहते हुए भी गृहस्थदशा में लिप्त नहीं होता; उदासीन अर्थात् निर्मोही रहता है।

- जिस प्रकार वेश्या का प्रेम, मात्र पैसे से ही होता है; मनुष्य से नहीं होता, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का प्रेम सम्यक्त्व में ही होता है; गृहस्थपने में नहीं होता।

- जिस प्रकार सोना कीचड़ में पड़े रहने पर भी निर्मल रहता है; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थदशा में रहने पर भी उसमें लिप्त नहीं होता क्योंकि वह उसे त्याज्य अर्थात् त्यागने योग्य मानता है।

छन्द – १६

सम्यग्दर्शन का अपूर्व माहात्म्य

प्रथम नर्क विन षट् भू जोतिस, वाण भवन सँढ़ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहीं, उपजत सम्यक्धारी॥
तीनि लोक तिहुँ काल माहिं नहीं, दर्शन सौ सुखकारी।
सकल धर्म कौ मूल यही, इस बिन करनी दुःखकारी॥

- सम्यग्दृष्टि जीव, आयु पूर्ण होने पर दूसरे से सातवें नरक के नारकी; ज्योतिषी, व्यन्तर, एवं भवनवासी देव; नपुंसक; सब प्रकार की स्त्री; एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और कर्मभूमि के पशु नहीं होते; नीच कुलवाले, विकृत अङ्गवाले, अल्पायुवाले तथा दरिद्री नहीं होते।

छन्द – १६

- वे विमानवासी देव, भोगभुमि के मनुष्य अथवा भोगभुमि के तिर्यञ्च ही होते हैं; कर्मभूमि के तिर्यञ्च भी नहीं होते। कदाचित् नरक में जाएँ तो पहले नरक से नीचे नहीं जाते।

- यदि किसी जीव को सम्यग्दर्शन से पूर्व नरकायु बँध गयी हो तो ऐसी दशा में सम्यग्दृष्टि, प्रथम नरक के नपुंसकों में भी उत्पन्न होता है; उनसे भिन्न अन्य नपुंसकों में उसकी उत्पत्ति का निषेध है।

- जिस प्रकार श्रेणिक राजा, सातवें नरक की आयु का बन्ध करने के बाद सम्यक्त्व को प्राप्त हुए थे। इससे उन्हें यद्यपि नरक में तो जाना ही पड़ा किन्तु आयु सातवें नरक से घटकर पहले नरक की रही; इसी प्रकार जो जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पूर्व तिर्यञ्च अथवा मनुष्य आयु का बन्ध करते हैं, वे भोगभूमि में जाते हैं किन्तु होते।

छन्द - १७

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हेतु प्रेरणा

मोखमहल की प्रथम सिडी है, याबिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै, सोई दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुनि चेत सयानें, काल वृथा मति खोवै।
यह नरभव फिरि मिलन कठिन है, जौ सम्यक् नहीं होवै॥

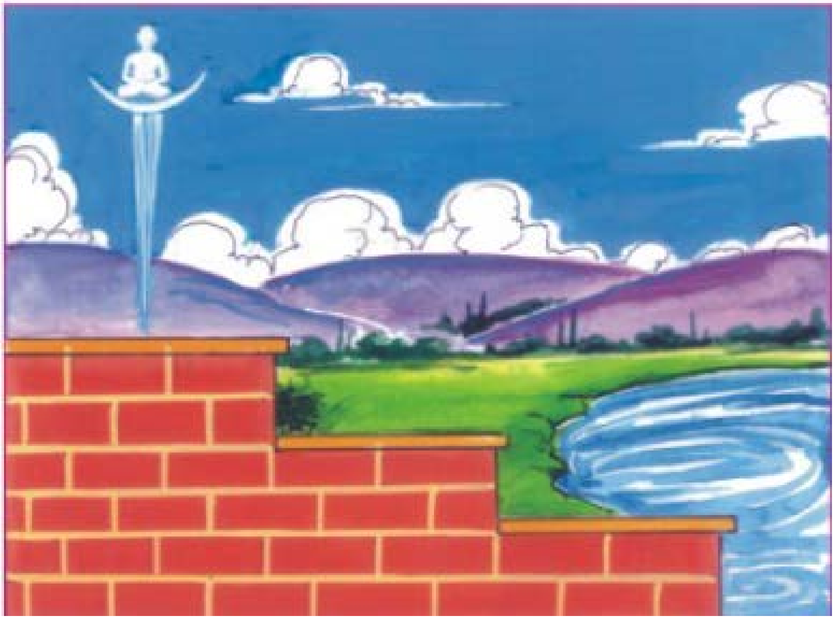

छन्द - १७

भावार्थ – यह सम्यग्दर्शन ही मोक्षरूपी महल में पहुँचने की प्रथम सीढ़ी है। इसके बिना ज्ञान और चारित्र सम्यक्पने को प्राप्त नहीं होते अर्थात् जब तक सम्यग्दर्शन न हो, तब तक ज्ञान, मिथ्याज्ञान और चारित्र, मिथ्याचारित्र कहलाता है; इसलिए प्रत्येक आत्मार्थी को ऐसा पवित्र सम्यग्दर्शन अवश्य धारण करना चाहिए।

पण्डित दौलतरामजी अपने आत्मा को सम्बोध कर कहते हैं कि — हे विवेकी आत्मा! तू ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन के स्वरूप को, अन्य अनुभवी ज्ञानियों से सुनकर, प्राप्त करने में सावधान हो; अपने अमूल्य मनुष्य जीवन को व्यर्थ न गँवा। इस जन्म में ही यदि सम्यक्त्व प्राप्त नहीं किया तो फिर मनुष्यपर्याय आदि अच्छे योग पुन: पुन: प्राप्त नहीं होंगे।

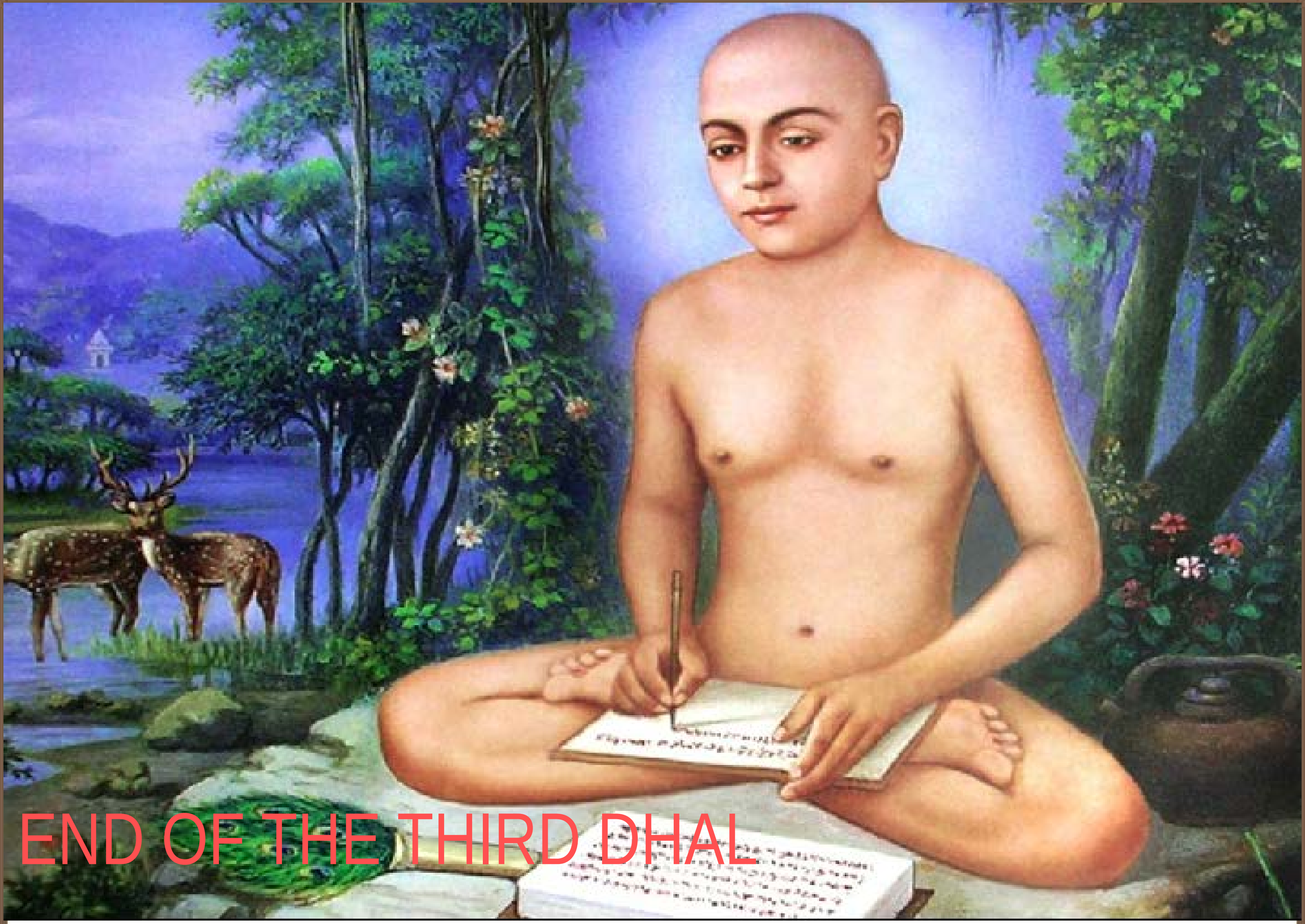
END OF THE THIRD DHAL

CONTACT INFORMATION

Email- jainsaurabhjain15@gmail.com

Email-dparihantsaurabh@yahoo.co.in

U.S. contact
Email-jainadhyatma@gmail.com

Email-rajnigosalia@hotmail.com